THE TIMES OF INDIA

*Date: 21-11-26*

# For VIPs, Not Ps

## *Why are cities never spruced up for People*

**TOI Editorials**

Bombay HC spoke our mind. What it said for Mumbai, finds an echo in every urban sprawl, mega to mini. Why can't city govts "polish and shine" our cities daily, the way they do, in the blink of an eye, for 'VVIPs' in town? HC said, "Instead of…this temporary show for two days, please have a permanent show…," hearing a plea against ill-effects of a waste management plant.

Indiawide, governance tanks on a daily basis. Every city has its own dirty-meter. Tonier parts are, well, tony clean, at one end. At the other, ghettoised areas are rarely serviced – there, children grow up in filthy conditions, surrounded by heaps of garbage and disease. The most ambitious of projects, like SMART cities, sputter when it comes to expanding sanitation infra to an extent that it is effective. That people litter, cities are overcrowded decades-old laments. Cleanliness is no MP or MLA's mantra, because it's not 'their job'. Whose job is it? No one, really. This part of admin often manifests as a hydra-headed beast – marked by an overlap of agencies, poor funding, even poorer staffing, making a hash of things.

But given a specific goal with a hard deadline, they all line up like ducks behind Top Babu, in mission mode. Wind down to the daily hum, and it's back to ho-hum. That's the point HC made. When they put their mind to it, local govts can do their job. Question, then, is – are citizens not worth such effort? Ah well, let's have VVIP visits every day.

---

THE ECONOMIC TIMES

*Date: 21-11-26*

# To Clean Yamuna, Give It Legal Rights

**ET Editorials**

A week after Delhi CM Rekha Gupta marked a new chapter in Delhi's tourism calendar with a Yamuna River Cruise service, the froth surfaced. Chhath puja participants who waded through the river to offer prayers left behind garlands and sundry items. Yamuna's riverbank became a dumping ground, and the familiar blame game ensued. Delhi's struggle to clean Yamuna is as legendary as its efforts to clean its air.

The problem and its solutions are well known. But nothing moves. Designating Yamuna as a 'legal person' could help. It did for Tamirabharani river in Tamil Nadu. In July, Madras High Court recognised the river as

a legal person — not as a sentient biological being but as a 'living deity' — granting it legal right to be free from pollution. The administration got cracking, and NGOs were brought on board. This route could work for Yamuna, too. Being an interstate river, it needs agency with jurisdiction across state boundaries to act in loco parentis. There are precedents in New Zealand and Colombia. Limiting matters to the legal right not to be polluted would address concerns raised by Supreme Court over the 2017 Uttarakhand High Court ruling granting legal personhood to Ganga and its tributaries. Implementation, however, will remain key. Legal personhood could grease bureaucratic and other wheels.

Causes of Yamuna's woes — untreated waste, effluents, runoff and dumping — are no mystery. Nor is money the constraint: a 8,941 cr package was launched in October. Yet, execution bottlenecks, unsewered colonies and multi-agency friction leave Delhi with a daily shortfall of roughly 180-300 MGD in sewage treatment, and a 6,000 t gap in solid waste processing. A legal guardian for the river could finally make the machinery move, if not flow.

---

दैनिक भास्कर

*Date: 21-11-26*

# हम यूएनएससी में स्थायी सदस्यता के प्रयास करें

**संपादकीय**

ट्रम्प, जिनपिंग और पुतिन की शेनझेन-बैठक में कोई बड़ा फैसला भले न हुआ हो, लेकिन तीनों का इस बात पर राजी होना कि यूएन के मूल ढांचे में सुधार की जरूरत है, भारत के लिए अच्छी खबर है। यूएस, चीन और रूस यूएन सुरक्षा परिषद (यूएनएससी) के पांच वीटो शक्ति सम्पन्न सदस्यों में हैं। भारत लम्बे अरसे से परिषद की स्थायी सदस्यता के लिए कोशिश करता रहा है। भारत को यूएन महासभा में 57 देशों के अफ्रीकी संगठन सहित जर्मनी, ईयू के अनेक देशों, ब्राजील आदि का और परिषद में भी रूस, फ्रांस और यूके का समर्थन प्राप्त है। अगर चीन भी राजी हो जाए तो भारत भी स्थायी सदस्य के रूप में वीटो शक्ति सम्पन्न देश हो जाएगा। पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में भी हम यूएन को उपादेय बनाने में मदद कर सकते हैं। इस संस्था को फंड्स देने में ट्रम्प की कोताही से यूएन अपना काम नहीं कर पा रहा है और कई उपक्रम बंद करने पड़े हैं। भारत के आने से ग्लोबल - साउथ को भी स्वर मिलेगा। चूंकि चीन, यूएस, रूस अपने-अपने हितों या विस्तारवादी नीतियों के कारण अन्य सदस्यों का भरोसा नहीं जीत सके हैं, लिहाजा भारत के आने से विश्व- व्यवस्था में नया संतुलन बन सकेगा। क्वाड को फिर से जीवित कर ट्रम्प ने भी संदेश दिया है कि एशिया-प्रशांत क्षेत्र में वह भारत, जापान, ऑस्ट्रेलिया के हितों की रक्षा में साथ है।

---

***Date: 21-11-26***

# करीब आ रहे अमेरिका के विरोधी देश, चीन-रूस समेत चार देशों का गठजोड़ पश्चिम के लिए खतरा

चीन, रूस, ईरान और उत्तर कोरिया के बीच बढ़ता सहयोग पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों के लिए बड़ा खतरा बन सकता है। इन चारों देशों के बीच सैन्य, आर्थिक और कूटनीतिक रिश्ते मजबूत हो रहे हैं। वे औपचारिक गठबंधन में शामिल नहीं हैं, लेकिन कई मुद्दों पर एक-दूसरे के हितों को आगे बढ़ा रहे हैं। इसके बावजूद अमेरिका समेत पश्चिमी देश इस उभरती धुरी के खतरे को पर्याप्त गंभीरता से नहीं ले रहे हैं।

शेनझेन में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प, चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग और रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन की हुई मुलाकात की तुलना 1945 में याल्टा सम्मेलन से की जा रही है। तब ब्रिटेन के विंस्टन चर्चिल, अमेरिका के फ्रैंकलिन रूजवेल्ट और सोवियत संघ के जोसेफ स्टालिन ने नाजी जर्मनी को हराने के बाद युद्ध के बाद की दुनिया की रूपरेखा तय की थी। लेकिन मौजूदा मुलाकात से ऐसे ऐतिहासिक नतीजे निकलने की संभावना नहीं है। भू-राजनीति की असली चुनौती चार पश्चिम-विरोधी शासन व्यवस्थाओं के बीच बढ़ता तालमेल है। इन देशों की सैन्य साझेदारी है । शहरों पर हमले के लिए ईरानी ड्रोन तकनीक और चीन के कलपुर्जों का इस्तेमाल कर रहा है। ईरानी इंजीनियर रूसी सेना के अनुभवों का अध्ययन कर रहे हैं, ताकि अपनी ड्रोन तकनीक में सुधार कर सकें। वहीं, उत्तर कोरिया ने रूस की ओर से यूक्रेन युद्ध में लड़ने के लिए करीब 16 हजार सैनिक भेजे हैं। बदले में उसे आर्थिक मदद और सैन्य तकनीक मिली है। हालांकि, चारों देशों के हित पूरी तरह एक जैसे नहीं हैं। रूस, ईरान और उत्तर कोरिया अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में अस्थिरता पैदा करने से परहेज नहीं करते, जबकि चीन अधिक सतर्क है। वैश्वीकरण से आर्थिक लाभ उठाने वाला चीन मौजूदा वैश्विक व्यवस्था को पूरी तरह अस्त-व्यस्त नहीं करना चाहता। वह नहीं चाहता कि रूस यूरोप में व्यापक युद्ध छेड़े, क्योंकि यूरोपीय देश उसके बड़े व्यापारिक साझेदार हैं, लेकिन यूक्रेन युद्ध में पश्चिमी देशों के उलझे रहने से उसे फायदा होता है। इससे अमेरिका के लिए ताइवान की सुरक्षा पर ध्यान देना मुश्किल हो सकता है। इतिहास में ऐसी अनौपचारिक धुरियों के उदाहरण मौजूद हैं। 1930 के दशक में जर्मनी, इटली और जापान ने मिलकर पश्चिमी देशों के सामने बड़ी चुनौती खड़ी की थी। आज भी यदि चीन ताइवान पर हमला करता है, तो रूस, ईरान या उत्तर कोरिया दुनिया के किसी दूसरे हिस्से अथवा साइबर क्षेत्र में नया संकट पैदा कर सकते हैं। ऐसे में पश्चिमी देशों को इस उभरती धुरी के खतरे को नजरअंदाज करने के बजाय साझा रणनीति बनानी होगी।

### तेल की सप्लाई से लेकर कई क्षेत्रों में आर्थिक सहयोग तक

इन देशों के बीच आर्थिक सहयोग भी गहरा हो रहा है। चीन के साथ व्यापार से तीनों देशों की अर्थव्यवस्था को सहारा मिलता है। चीन के धन का भुगतान करने वाले सिस्टम पश्चिमी देशों के प्रतिबंधों से बचने के रास्ते देते

हैं। चीन के साथ रूस का 95 प्रतिशत से अधिक व्यापार अब युआन या रूबल में होता है। रूसी तेल चीन और उत्तर कोरिया जाता है। ईरानी तेल मुख्य रूप से प्रतिबंधों को चकमा देने वाले जहाजों से चीन भेजा जाता है। उत्तर कोरियाई मजदूर रूसी कारखानों में काम करते हैं।

**चीन की अप्रत्यक्ष सैनिक मदद**

चीन प्रत्यक्ष रूप से सैन्य सहायता देने से बचता है। लेकिन वह रूसी ड्रोन्स के युद्ध में प्रदर्शन का डेटा जुटा रहा है। खाड़ी में अमेरिकी बलों पर ईरान द्वारा दागी जाने वाली मिसाइल चीन के ठोस ईंधन और केमिकल्स के सहारे चलती हैं। रूसी खुफिया और चीनी उपग्रह डेटा से उन्हें मदद मिलती है।

**यूएन में एक साथ वोटिंग**

चारों देश कूटनीतिक सहयोग करते हैं। वे संयुक्त राष्ट्र (यूएन) में एक सुर में मतदान करते हैं। रूसी और चीनी वीटो पुतिन के युद्धों को रोकने की किसी भी पहल में बाधा डालते हैं। इस धुरी के देश एक-दूसरे के विचार को आगे बढ़ाते हैं। ऐसी कहानियों को बढ़ावा देते हैं जो पश्चिमी लोकतंत्रों को कमजोर करती हैं।

---

दैनिक जागरण

***Date: 21-11-26***

# संवैधानिक वादे को पूरा करने की चुनौती

**प्रो. मनोज कुमार झा, ( लेखक राष्ट्रीय जनता दल के राज्यसभा सदस्य हैं )**



शिक्षा, विशेषकर उच्च शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य व्यक्ति में स्वतंत्र और आलोचनात्मक चिंतन विकसित करना है। अपेक्षा की जाती है कि शिक्षा व्यक्ति को जन्म से निर्धारित सामाजिक पदानुक्रमों और पूर्वाग्रहों से मुक्त करे, लेकिन विडंबना यह है कि हमारे शिक्षण संस्थान आज भी उन्हीं पदानुक्रमों को नए रूपों में पुनरुत्पादित कर रहे हैं। विश्वविद्यालय विवेक, तर्क और संवाद के केंद्र होने चाहिए, लेकिन वहां जो कुछ घटित हो रहा है, वह कई बार पूर्वाग्रहों को और मजबूत करता दिखाई देता है। हमें यह पूछना होगा कि संवैधानिक गारंटियों, आरक्षण और शिक्षा के विस्तार के बावजूद जाति गरिमा के अनुभव को किस तरह प्रभावित करती है? शायद इस प्रश्न

को समझने में साहित्य हमारी मदद कर सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' इसका एक मार्मिक उदाहरण है कि शिक्षा सामाजिक मुक्ति का रास्ता तो है, लेकिन उस रास्ते पर जातिगत अपमान और भेदभाव भी साथ चलते हैं। बामा की 'करुक्कु' भी इस धारणा को चुनौती देती है कि शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता अपने आप जाति को समाप्त कर देते हैं। समानता की भाषा के नीचे भी जाति रिश्तों और संस्थागत व्यवहारों में जीवित रह सकती है। किसी एससी-एसटी विद्यार्थी के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश केवल एक व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं होता। उसमें उन पीढ़ियों की आकांक्षाएं शामिल होती हैं, जिन्हें ज्ञान और शिक्षा के अवसरों से वंचित रखा गया। अक्सर योग्यता को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है, मानो उसका सामाजिक परिस्थितियों से कोई संबंध ही न हो, जबकि सच यह है कि योग्यता के विकास के लिए बेहतर स्कूल, किताबें, कोचिंग, कंप्यूटर, अनुकूल पारिवारिक वातावरण और सामाजिक संपर्कों की भूमिका होती है। जिन परिस्थितियों में योग्यता विकसित और प्रदर्शित होती है, उनकी असमानता को नजरअंदाज करके हम मेरिट का निष्पक्ष मूल्यांकन कैसे कर सकते हैं?

दया पवार की 'बलुतं' उन सामाजिक व्यवस्थाओं को उजागर करती है, जिनके माध्यम से जाति मनुष्य की गरिमा और उसकी निर्भरता को नियंत्रित करती है। शरणकुमार लिंबाले की 'अक्करमाशी' उस पीड़ा को सामने लाती है, जिसमें व्यक्ति को यह महसूस कराया जाता है कि उसका अपना अस्तित्व ही जैसे किसी वैधता का अधिकारी नहीं है। प्रेमचंद की 'सद्गति' भी हमें उन सवालों से रूबरू कराती है, जिन्हें आधुनिक भारत शायद अब अतीत मानकर भूल जाना चाहता है। गिरिराज किशोर का उपन्यास 'परिशिष्ट' ऐसे ही सवालों को देश के प्रतिष्ठित तकनीकी शिक्षण संस्थानों के भीतर ले जाता है। यह दिखाता है कि आधुनिकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मेरिटोक्रेसी की शब्दावली के पीछे जातिगत पूर्वाग्रह किस तरह मौजूद रह सकते हैं।

समकालीन आंकड़े इन साहित्यिक अनुभवों को केवल अतीत या कल्पना का विषय मानकर खारिज करने की गुंजाइश नहीं छोड़ते। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 704 विश्वविद्यालयों और 1,553 कालेजों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर संसदीय समिति को दी गई जानकारी के अनुसार उच्च शिक्षण संस्थानों में जातिगत भेदभाव की शिकायतें 2019-20 में 173 थीं, जो 2023-24 में बढ़कर 378 हो गईं। इन आंकड़ों की सावधानीपूर्वक व्याख्या आवश्यक है। शिकायतों में वृद्धि घटनाएं बढ़ने, जागरूकता और शिकायत दर्ज कराने की प्रवृत्ति में सुधार अथवा इन सभी कारणों का परिणाम हो सकती है, पर आंकड़ों से आगे एक सवाल यह है कि शिकायत दर्ज होने के बाद होता क्या है? हैदराबाद विश्वविद्यालय के रोहित वेमुला की 2016 में हुई आत्महत्या और हाल में आइआइटी बांबे के साहिल वाकोडे की मौत ने जाति, वंचित समुदायों के विद्यार्थियों की असुरक्षा और संस्थागत प्रतिक्रिया के संबंध पर गंभीर सवाल खड़े किए हैं। इन घटनाओं की निष्पक्षता के साथ जांच होने के साथ ही यह भी पूछा जाए कि क्या हमारे संस्थान अपमान, अलगाव और बहिष्कार के उन रूपों को संबोधित करने में सक्षम हैं, जिनका सामना हाशिये से आने वाले विद्यार्थी करते हैं?

किसी प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय की जिम्मेदारी इसलिए कम नहीं हो जाती कि भेदभाव स्वीकार करने से उसकी छवि प्रभावित हो सकती है। विश्वविद्यालय केवल प्रशिक्षण देने और डिग्रियां बांटने के स्थान नहीं हैं। वे नागरिकता

के संस्कार विकसित करने वाली जगहें भी हैं। यहीं समानता और बंधुता या तो अनुभव की जाती हैं या उनसे वंचित किया जाता है। संविधान कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है, लेकिन संवैधानिक नैतिकता केवल संविधान के पन्नों तक सीमित नहीं रह सकती। उसे संस्थागत व्यवहार का हिस्सा बनना होगा। किसी विश्वविद्यालय की समानता के प्रति प्रतिबद्धता केवल प्रवेश और विविधता के आंकड़ों से नहीं, बल्कि इससे मापी जानी चाहिए कि वहां विद्यार्थी बिना अपमान और भय के असहमत, संवाद और आकांक्षा कर सकते हैं या नहीं? यदि आज भी जाति यह तय करती है कि कौन अपना है और किसे अपनी स्वीकार्यता के लिए लगातार संघर्ष करना होगा, तो यह समानता के संवैधानिक वादे के साथ हमारी सामूहिक विफलता है। कक्षा में मौजूद जाति दरअसल हमारे लोकतंत्र के भीतर मौजूद उस असमानता का आईना है, जिससे नजरें चुराकर हम समानता का दावा नहीं कर सकते।

---

जनसत्ता

***Date: 21-11-26***

# रियायत बनाम दायित्व

**संपादकीय**



वैश्विक स्तर पर देश की अर्थव्यवस्था को अगर शीर्ष क्रम की दौड़ में मजबूत स्थिति में बताया जा रहा है, तो इसके पीछे एक सुचिंतित आर्थिक नीति और उद्योग जगत का योगदान है। देश का औद्योगिक क्षेत्र आज चुनौतियों के सामने खुद को सक्षम पा रहा है, तो इसमें सरकार से अनेक स्तर पर मिली रियायतें और कर- छूट के सहयोग की बड़ी भूमिका रही है। हालांकि सरकारी रियायतें हासिल करने के समांतर होना यह चाहिए था कि उद्योग जगत इसके लाभ का विस्तार और वितरण अपने कामगारों से लेकर आम लोगों तक करता, लेकिन हुआ यह कि कंपनियों ने अपने लिए तो मुनाफे का दायरा विस्तृत कर लिया, लेकिन न तो नई नौकरियों का अपेक्षित विस्तार हुआ और न ही मौजूदा कर्मचारियों के वेतन में आनुपातिक और न्यायपूर्ण बढ़ोतरी हुई। यही नहीं, वस्तुओं की कीमतों में लगातार इजाफे के बावजूद ज्यादातर कंपनियों के उत्पाद की गुणवत्ता और मात्रा में जिस स्तर की गिरावट देखी गई, उससे यह सवाल उठा है कि आखिर बेहिसाब मुनाफे के एवज में कंपनियां देश और समाज को क्या दे रही हैं।

देश की अर्थव्यवस्था को गति देने वाले कारकों को मजबूत करने के लिए सरकार अपनी ओर से कुछ अतिरिक्त सुविधाएं मुहैया कराती है, तो कायदे से उसके उपयोग के परिणामों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। विडंबना यह है कि सरकार इसे उम्मीद के सहारे छोड़ देती है और इस नीति से लाभ उठाने वाली कंपनियां अपनी जिम्मेदारी से मुंह मोड़ लेती हैं। ऐसे में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने गुरुवार को उद्योग जगत के सामने जो सवाल रखे हैं, वे वक्त का तकाजा हैं और आम लोगों के हक का हिसाब खोजने की तरह है। गौरतलब है कि फेडरेशन आफ इंडियन चैंबर्स आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री यानी फिक्की के सौ वर्ष पूरे होने के मौके पर हुई एक बैठक में प्रधानमंत्री ने उद्योग जगत से पूछा कि सरकार की ओर से करों में रियायत दिए जाने के बावजूद कंपनियों ने कर्मचारियों की संख्या और उनके वेतन में उसी अनुपात में बढ़ोतरी क्यों नहीं की। उन्होंने साफ लहजे में कहा कि उद्योग जगत सरकार से मिली रियायतों का लाभ उत्पादन की गुणवत्ता बढ़ाने और उन्हें विश्वस्तरीय बनाने में खर्च नहीं कर रहा।

अर्थव्यवस्था को आंकड़ों के आईने में देखे जाने के समांतर प्रधानमंत्री ने जो सवाल उठाए हैं, आमतौर पर उनकी अनदेखी का हासिल यह रहा है कि देश 'आर्थिक संसाधनों पर कब्जा तथा मुनाफे का दायरा कुछ लोगों और तबकों के बीच सिकुड़ता गया है। वहीं ज्यादातर आबादी रोजी-रोटी और रोजमर्रा की जरूरत की वस्तुओं की फिक्र में अपने वाजिब हक से दूर होती गई है। एक ओर सरकार ने अर्थव्यवस्था को रफ्तार देने के मकसद से उद्योग जगत को हर स्तर पर रियायतें या कर राहत दी, लेकिन इन सुविधाओं को कंपनियों ने अपने मुनाफे का जरिया बना लिया। नए रोजगार देने, मौजूदा कर्मचारियों का वेतन बढ़ाने और उन्हें अन्य अधिकार देना तो दूर, कीमतों में इजाफे के बावजूद बहुत सारी कंपनियों के उत्पादों की गुणवत्ता में या तो गिरावट देखी गई या फिर उनकी मात्रा में इस तरह कमी की गई कि लोगों का ध्यान उस पर नहीं जाए। ठीक इसी समय निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की गुणवत्ता के अलग मानक देखे जा सकते हैं। सवाल है कि क्या देश के आम नागरिक उचित कीमत पर बेहतरीन गुणवत्ता और मात्रा वाली वस्तुएं हासिल करने के हकदार नहीं है? यह ध्यान रखने की जरूरत है कि रोजगार के अभाव और आय में कमी के बीच अगर लोगों की क्रयशक्ति कमजोर होती है, तो इसका खमियाजा आखिरकार उद्योग जगत को भी भुगतना पड़ सकता है।

---

***Date: 21-11-26***

# क्षेत्रीय कूटनीति से चुनौतियों का सामना

**ब्रह्मदीप अलूने**

बदलती वैश्विक राजनीति और महाशक्ति बनने की प्रतिस्पर्धा के दौर में किसी देश की अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा एवं प्रभाव उसकी क्षेत्रीय कूटनीति की मजबूती से भी तय होते हैं। क्षेत्रीय शांति, सहयोग और आपसी विश्वास का

सीधा असर वैश्विक व्यापार, सुरक्षा एवं शक्ति संतुलन पर पड़ता है। चीन की बढ़ती सामरिक और आर्थिक शक्ति तथा अमेरिका के साथ भारत के संबंधों में उभरते अविश्वास ने भारतीय विदेश नीति के सामने नई चुनौतियां खड़ी की हैं। ऐसे में भारत के लिए जरूरी है कि वह अपनी सुरक्षा और आर्थिक हितों के लिए किसी एक बड़ी शक्ति पर निर्भर रहने के बजाय क्षेत्रीय साझेदारी को मजबूत करे। क्वाड ने हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत को सहयोग का एक महत्त्वपूर्ण मंच दिया है, लेकिन इससे अधिक प्रभावी और व्यापक क्षेत्रीय सहयोग की नई व्यवस्था विकसित करने पर भारत को गंभीरता से विचार करना चाहिए। व्यापार, रक्षा उत्पादन, ऊर्जा, तकनीक और समुद्री सुरक्षा के क्षेत्र में ऐसे सहयोग तंत्र विकसित करने जरूरी हैं, जिनमें क्षेत्रीय देशों की सक्रिय भागीदारी हो। दरअसल, भारत की चुनौती चीन से संतुलित संबंधों के अलावा अपनी स्वतंत्र विदेश नीति और वैश्विक प्रभाव को बढ़ाने की भी है।

गौरतलब है कि बांग्लादेश की राजनीतिक परिस्थितियां जटिल हो गई हैं। भारत में शरण लेने वाली शेख हसीना अपने देश लौटना चाहती हैं, भारत भी उन्हें भेजना चाहता है। मगर मानवीय आधार पर कानूनी शर्तों और पेचीदगियों का असर भारत-बांग्लादेश संबंधों को प्रभावित कर रहा है। भारत के लिए बांग्लादेश राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास, पूर्वोत्तर के संपर्क, समुद्री हितों और क्षेत्रीय शक्ति संतुलन का महत्त्वपूर्ण साझेदार है। दोनों देशों के बीच संबंधों में उतार-चढ़ाव का प्रभाव व्यापार और कूटनीति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि भारत की आंतरिक सुरक्षा और व्यापक विदेश नीति को भी प्रभावित करता है। इसलिए भारत के लिए बांग्लादेश के साथ संबंधों को आपसी विश्वास, समानता, सुरक्षा सहयोग और साझा आर्थिक हितों के आधार पर आगे बढ़ाना आवश्यक है।

मनीला में आयोजित आसियान-भारत शिखर सम्मेलन और पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन में भारत ने क्वाड को एक विश्वसनीय साझेदार एवं समाधान प्रदान करने वाला संगठन बताया। आमतौर पर यह माना जाता है कि चीन की बढ़ती सैन्य और आर्थिक गतिविधियों के बीच क्वाड क्षेत्रीय शक्ति संतुलन बनाए रखने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। मगर कूटनीतिक और सामरिक स्तर पर क्वाड अमेरिकी हितों से प्रभावित समूह नजर आता है। क्वाड के चारों देशों भारत, अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलिया के चीन के साथ संबंध अलग-अलग परिस्थितियों से प्रभावित हैं। भारत की चिंता सीमा और क्षेत्रीय सुरक्षा है, अमेरिका की वैश्विक शक्ति एवं तकनीकी प्रतिस्पर्धा, जापान की क्षेत्रीय सुरक्षा और समुद्री विवाद, जबकि आस्ट्रेलिया की चुनौती आर्थिक निर्भरता एवं सामरिक सुरक्षा के बीच संतुलन बनाना है।

अमेरिका और चीन के संबंध वर्तमान वैश्विक राजनीति की सबसे महत्त्वपूर्ण रणनीतिक प्रतिस्पर्धाओं में शामिल हैं। दोनों देश व्यापार, तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सेमीकंडक्टर तथा सैन्य शक्ति के क्षेत्र में एक-दूसरे को चुनौती देते हैं। ताइवान और दक्षिण चीन सागर में चीन की गतिविधियां तथा अमेरिकी हिंद-प्रशांत नीति दोनों के बीच तनाव के प्रमुख कारण हैं। चीन के बढ़ते वैश्विक प्रभाव को अमेरिका संतुलित करना चाहता है, जबकि चीन अमेरिकी हस्तक्षेप का विरोध करता है। इसके बावजूद दोनों देशों के बीच व्यापक व्यापारिक संबंध है। डोनाल्ड

ट्रंप और शी जिनपिंग की शिखर वार्ताओं से साफ है कि ये दोनों देश राष्ट्रीय हितों की कूटनीति पर काम करते हैं। नियंत्रण एवं संतुलन पर आधारित यह कूटनीति भारत को आशंकित करने के लिए पर्याप्त है।

वहीं, जापान और चीन के संबंध परस्पर आर्थिक निर्भरता के बावजूद गहरे रणनीतिक तनाव से प्रभावित हैं। पूर्वी चीन सागर में सेनकाकू द्वीपों को लेकर दोनों देशों के बीच विवाद है। चीन की बढ़ती नौसैनिक गतिविधियां और ताइवान के प्रति उसका रुख जापान की सुरक्षा चिंताओं को बढ़ाते हैं। जापान, अमेरिका के साथ अपनी सुरक्षा साझेदारी मजबूत कर रहा है और हिंद-प्रशांत क्षेत्र में चीन के एकतरफा प्रभाव का विरोध करता है। दूसरी ओर, जापान की बढ़ती सैन्य सक्रियता को चीन संदेह की नजर से देखता है। दक्षिण प्रशांत क्षेत्र में चीन की बढ़ती सैन्य और आर्थिक गतिविधियां आस्ट्रेलिया की सुरक्षा चिंताओं को भी बढ़ाती हैं। आस्ट्रेलिया ने अमेरिका और ब्रिटेन के साथ 'आकस' सुरक्षा साझेदारी की है तथा वह क्वाड में भी सक्रिय भूमिका निभाता है। चीन, भारत के लिए सीमा सुरक्षा, सामरिक प्रतिस्पर्धा और आर्थिक निर्भरता के लिहाज से एक बड़ी चुनौती है। वास्तविक नियंत्रण रेखा पर विवाद और पाकिस्तान के साथ उसकी सैन्य साझेदारी भारत की सुरक्षा चिंताएं बढ़ाती हैं।

अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की अविश्वसनीय कूटनीति और बदलते वैश्विक परिदृश्य में अमेरिकी हितों से अलग होकर भारत, जापान और आस्ट्रेलिया को आगे की ओर देखने की जरूरत है। इन तीनों देशों की चुनौतियां मुख्य रूप से क्षेत्रीय सुरक्षा, समुद्री मार्गों और चीन की बढ़ती सामरिक शक्ति से जुड़ी हैं, जबकि अमेरिका के हित इससे कहीं व्यापक हैं। वह अपने सहयोगी देशों की सुरक्षा, अंतरराष्ट्रीय समुद्री मार्गों पर निर्बाध आवागमन, ताइवान की सुरक्षा और हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अपना रणनीतिक प्रभाव बनाए रखना चाहता है। इन उद्देश्यों में भारत, जापान और आस्ट्रेलिया के हितों की समानता है, लेकिन उनकी प्राथमिकताएं पूरी तरह एक जैसी नहीं हैं। इसलिए इन देशों को अपनी सुरक्षा और आर्थिक हितों के लिए अमेरिकी रणनीति पर पूरी तरह निर्भर रहने के बजाय स्वतंत्र क्षेत्रीय सहयोग विकसित करने की जरूरत है।

भारत की विदेश नीति में अमेरिका के साथ सहयोग महत्त्वपूर्ण है, लेकिन चीन से मुकाबले के लिए पूरी तरह अमेरिकी रणनीतिक समर्थन पर निर्भर रहना भारत के दीर्घकालीन हितों के अनुकूल नहीं होगा। अमेरिका की अपनी वैश्विक प्राथमिकताएं और राजनीतिक परिस्थितियां हैं। इसलिए भारत को हिंद-प्रशांत क्षेत्र में जापान, आस्ट्रेलिया और दक्षिण कोरिया के साथ स्वतंत्र क्षेत्रीय सहयोग का मजबूत ढांचा विकसित करना चाहिए। यह सहयोग चीन के विरुद्ध सैन्य गठबंधन बनाने के स्थान पर आर्थिक क्षमता, समुद्री सुरक्षा, तकनीकी आत्मनिर्भरता और क्षेत्रीय शक्ति संतुलन पर आधारित होना चाहिए। भारत-जापान-आस्ट्रेलिया का त्रिपक्षीय सहयोग क्वाड से ज्यादा मजबूत परिणाम दे सकता है। भौगोलिक और सामरिक दृष्टि से दक्षिण कोरिया भी इस समूह का अहम साझेदार हो सकता है। दक्षिण कोरिया के पास जहाज निर्माण, इलेक्ट्रानिक्स, सेमीकंडक्टर, रक्षा उत्पादन और उन्नत तकनीक की क्षमता है।

इन चारों देशों को दुर्लभ खनिजों, सेमीकंडक्टर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, इलेक्ट्रिक वाहनों और रक्षा उपकरणों के आपूर्ति तंत्र विकसित करने पर काम करना चाहिए। इससे चीन पर आर्थिक निर्भरता कम करने के विकल्प तैयार होंगे।

इंडोनेशिया, वियतनाम, फिलीपींस और सिंगापुर जैसे देशों को भी इस सहयोग से जोड़ना चाहिए। इससे क्षेत्रीय देशों की सुरक्षा, आर्थिक विकास और स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता को समर्थन मिलेगा। भारत को ऐसी कूटनीति की आवश्यकता है, जिसमें क्षेत्रीय रणनीति का केंद्र भारत और उसके एशियाई साझेदार हों।